राघबीर सिंह

बनाम

हरियाणा राज्य

13 सितंबर, 1984

[ई. एस. वेंकटरमैया और सब्यसाची मुखर्जी, न्यायाधिपतिगण]

आपराधिक प्रक्रिया संहिता ई 1973 (1974 का अधिनियम II) की धारा 428 सपठित पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय निर्देश संख्या 29442 नियम VI V 39 दिनांक 19.11.1945- किसी अभियुक्त द्वारा कारावास की अवधि के कारावास की अवधि के विरुद्ध समायोजन का दायरा, स्पष्ट किया गया- क्या यह उस व्यक्ति के लिए खुला है जो अपने द्वारा किए गए अपराध के लिए दोषी ठहराए जाने पर कारावास की सजा काट रहा है, यह दावा करने के लिए जब वह अपने द्वारा किए गए कथित किसी अन्य अपराध के संबंध में कारावास की सजा काट रहा था, तब की गई जांच या पूछताछ और सुनवाई में लगी अवधि को बाद वाले अपराध के लिए दोषी ठहराए जाने पर उस पर लगाए गए कारावास की अवधि के विरुद्ध समायोजित किया जाना चाहिए।

याचिकाकर्ता को भारतीय दंड संहिता की धारा 307 और धारा 459 के तहत अपराध के लिए दोषी ठहराया गया और 1 फरवरी 1980 को कठोर कारावास की सजा सुनाई गई। मुकदमे के लंबित रहने के दौरान याचिकाकर्ता एक अन्य मामले एफ.आई.आर. 315/78 भारतीय दंड संहिता की धारा 457/380/411 के तहत में 11 जनवरी, 1980 से न्यायिक हिरासत में था, जो 16 फरवरी 1981 को उनकी दोषसिद्धि के साथ समाप्त हो गई और उन्हें कठोर कारावास की सजा सुनाई गई। बाद वाले मामले में यह आदेश दिया गया कि याचिकाकर्ता संहिता की धारा 428 के तहत मुजरा पाने का हकदार है। याचिकाकर्ता ने दावा किया कि 1 फरवरी, 1980 के पहले मामले में उसकी सजा के बावजूद वह 11. 1. 1980 से 16. 2. 81 तक सेट-ऑफ का हकदार था। वर्तमान रिट याचिका में सवाल यह है कि क्या ऐसा दावा क्रम में सही है?

न्यायालय ने रिट याचिका को खारिज करते हुए अभिनिर्धारित किया:

1. याचिकाकर्ता यह दावा करने का हकदार नहीं है कि 1 फरवरी, 1980, जिस तारीख को उसे सत्र मामले में दोषी ठहराया गया था और 16 फरवरी, 1981, जिस तारीख को उसे मेट्रोपॉलिटन मजिस्ट्रेट, दिल्ली द्वारा एक अन्य मामले में दोषी ठहराया गया था, के बीच की अवधि उस मामले में जब वह सत्र मामले में उस पर लगाए गए कारावास की सजा काट रहा था, उसे मेट्रोपॉलिटन मजिस्ट्रेट, दिल्ली द्वारा लगाए गए कारावास की अवधि के खिलाफ खारिज कर दिया जाना चाहिए। उस अवधि को सत्र

मामले में निर्देशित अनुसार याचिकाकर्ता द्वारा भोगे गए कारावास के हिस्से के रूप में गिना जाना चाहिए। [728 जी-एच]

2:1. दंड प्रक्रिया संहिता 1973 की धारा 428 का उस असंतोषजनक स्थिति को सुधारने के उद्देश्य से पेश किया गया था जो 1898 की पूर्व संहिता लागू होने के समय प्रचलित थी। तब यह पाया गया कि बहुत से व्यक्तियों को दोष-सिद्धि-पूर्व चरण में अनुचित रूप से लंबे समय तक जेल में रखा जा रहा था, कई बार कारावास की वास्तविक सजा से कई गुना अधिक अवधि के लिए जो उन्हें दोषी ठहराए जाने पर दी जा सकती थी। [727 एफ-जी]

2:2. संहिता की धारा 428 का लाभ सुरक्षित करने के लिए, कैदी को यह दिखाना होगा कि उसे उस मामले की जांच या सुनवाई के उद्देश्य से जेल में हिरासत में लिया गया था जिसमें बाद में उसे दोषी ठहराया गया और सजा सुनाई गई। यह इस प्रकार है कि यदि कोई व्यक्ति किसी अवधि के दौरान किसी मामले में दोषी पाए जाने पर अदालत द्वारा लगाए गए कारावास की सजा काट रहा है। किसी अन्य मामले की जांच, पूछताछ या सुनवाई के मामले में, वह यह दावा नहीं कर सकता कि ऐसी जांच, पूछताछ या सुनवाई में लगी अवधि को बाद के मामले में लगाए जाने वाले कारावास की सजा के खिलाफ समायोजित किया जाना चाहिए, भले ही उसे ऐसी अवधि के दौरान हिरासत में लिया गया हो। ऐसे मामले में हिरासत

की अवधि वास्तव में कारावास की अवधि का एक हिस्सा है जिसे वह पहले किसी अन्य अपराध के लिए सजा सुनाए जाने पर भुगत रहा है। यह हिरासत की अवधि नहीं है उसी मामले की जांच, पूछताछ या मुकदमे के दौरान उसके द्वारा किया गया अपराध में, जिसमें बाद में उसे दोषी ठहराया गया और कारावास की सजा सुनाई गई। वह संहिता की धारा 428 के तहत दोहरे लाभ का दावा नहीं कर सकता है, अर्थात उसी अवधि को पूर्व अपराध करने के लिए लगाए गए कारावास की अवधि के हिस्से के रूप में गिना जाएगा और साथ ही अपराध करने के लिए लगाए गए कारावास की अवधि के खिलाफ भी समायोजित किया जाएगा, बाद वाला अपराध भी। पंजाब एवं हरियाणा उच्च न्यायालय द्वारा जारी निर्देश संख्या 29442 नियम II V. 38 दिनांक 29 नवम्बर 1975 अप्राप्य है। [727 जी-एच]

मूल क्षेत्राधिकार: रिट याचिका (आपराधिक) संख्या 941/1984

(भारत के संविधान के अनुच्छेद 32 के तहत)

एस.एल. छिब्बर, याचिकाकर्ता के लिए।

अश्वनी कुमार एवं आर.एन. पोद्दार प्रतिवादी के लिये।

न्यायालय का फैसला वेंकटरमैया, न्यायाधिपति द्वारा सुनाया गया। संविधान के अनुच्छेद 32 के तहत इस याचिका में निर्णय के लिए जो संक्षिप्त प्रश्न उठता है, वह यह है कि क्या यह एक ऐसे व्यक्ति के लिए खुला है जो अपने द्वारा किए गए अपराध के लिए दोषी ठहराए जाने पर

कारावास से गुजर रहा है, यह दावा करने के लिए कि उसके द्वारा किए गए किसी अन्य अपराध के संबंध में किए गए जांच या जांच और मुकदमे के दौरान वह कारावास से गुजर रहा था, दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (इसके बाद 'संहिता' के रूप में संदर्भित) की धारा 428 के तहत बाद के अपराध के लिए दोषी ठहराए जाने पर उस पर लगाए गए कारावास की अवधि के खिलाफ निर्धारित किया जाना चाहिए।

इस मामले के प्रयोजन के लिए प्रासंगिक तथ्य ये हैं: याचिकाकर्ता को भारतीय दंड संहिता की धारा 307 के तहत दंडनीय अपराध का दोषी ठहराया गया था और सात साल के लिए कठोर कारावास और रुपये 100/- का जुर्माना भरने की सजा सुनाई गई थी। अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश, करनाल द्वारा 1 फरवरी 1980 को एक सत्र मामले में इसी मामले में, उन्हें भारतीय दंड संहिता की धारा 459 के तहत दंडनीय अपराध का भी दोषी ठहराया गया और पांच साल के कठोर कारावास और रुपये 100/- का जुर्माना भरने की सजा सुनाई गई। कारावास की दोनों सजाएँ वर्तमान में जारी रखने का निर्देश दिया गया। याचिकाकर्ता एक अन्य मामले एफ.आई.आर. संख्या 315/78 भारतीय दंड संहिता की धारा 457/380/411 के तहत 11 जनवरी 1980 से दिल्ली में मेट्रोपॉलिटन मजिस्ट्रेट के समक्ष न्यायिक हिरासत में था। वह मामला 16 फरवरी, 1981 को भारतीय दंड संहिता की धारा 457 के तहत दंडनीय अपराध के लिए उनकी दोषसिद्धि के साथ समाप्त हुआ और उन्हें एक वर्ष के लिए कारावास और रुपये 200/-

का जुर्माना भरने की सजा सुनाई गई। उसी मामले में उन्हें भारतीय दंड संहिता की धारा 380 के तहत दंडनीय अपराध का दोषी ठहराया गया और चार महीने के कठोर कारावास और जुर्माना भरने की सजा सुनाई गई। इस मामले में दी गई कारावास की दोनों सजाएं एक साथ चलने का निर्देश दिया गया। इस मामले में आगे यह आदेश दिया गया कि याचिकाकर्ता संहिता की धारा 428 के तहत मुजरा पाने का हकदार है। इस मामले में शामिल मुद्दे पर निर्णय लेने के लिए अन्य मामले या मामलों का उल्लेख करना आवश्यक नहीं है जिसमें उसे भी दोषी ठहराया गया है।

याचिकाकर्ता अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश, करनाल के निर्देशानुसार सत्र मामले में सात साल के कठोर कारावास की 1 फरवरी, 1980 से जिला जेल, रोहतक में सजा काट रहा है। मेट्रोपॉलिटन मजिस्ट्रेट, दिल्ली द्वारा लगाए गए कारावास की सजाएं अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश, करनाल द्वारा लगाए गए कारावास की समाप्ति पर शुरू होंगी, जैसा कि संहिता की धारा 427 द्वारा निर्धारित है क्योंकि अदालत ने यह निर्देश नहीं दिया है कि अगली सजा पिछली सजा के साथ-साथ चलेगी। हालांकि, याचिकाकर्ता का तर्क है कि चूंकि वह मामले की जांच और सुनवाई के सिलसिले में 11 जनवरी, 1980 से न्यायिक हिरासत में था, जो 16 फरवरी, 1981 को मेट्रोपॉलिटन मजिस्ट्रेट द्वारा उसे दोषी ठहराए जाने के साथ समाप्त हुआ, इसलिए पूरी सजा समाप्त हो गई। 11 जनवरी, 1980 और 16 फरवरी, 1981 के बीच मेट्रोपॉलिटन मजिस्ट्रेट, दिल्ली द्वारा लगाई गई कारावास

की सजा के खिलाफ़ मुआवज़ा दिया जाना चाहिए। याचिकाकर्ता के इस दावे का हरियाणा राज्य सरकार ने विरोध किया है। राज्य सरकार की ओर से आग्रह किया गया कि जबकि याचिकाकर्ता हकदार संहिता की धारा 428 के तहत 11 जनवरी 1980 और 1 फरवरी 1980 के बीच की अवधि को समाप्त करने के लिए हकदार है, जिस तारीख को उसे अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश, करनाल द्वारा सात साल के कारावास की सजा सुनाई गई थी, मेट्रोपॉलिटन मजिस्ट्रेट, दिल्ली द्वारा लगाए गए कारावास की सजा के खिलाफ, 1 फरवरी, 1980 और 16 फरवरी, 1981 के बीच की अवधि, जिस तारीख को याचिकाकर्ता को मेट्रोपोलिटन मजिस्ट्रेट, दिल्ली द्वारा दोषी ठहराया गया था, को मुजरा नहीं किया जा सकता है। उस अवधि में याचिकाकर्ता वास्तव में सेशन मामले में उस पर लगाए गए कारावास की सजा काट रहा था। राज्य सरकार ने अपने तर्क के समर्थन में पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय द्वारा 29 नवंबर, 1975 को संख्या 29442 नियम VI.V.38 में जारी निर्देश पर भरोसा किया है, जिसका प्रासंगिक भाग इस प्रकार है:

> "किसी अन्य मामले में जांच या मुकदमे का सामना करने के दौरान किसी अदालत द्वारा उसे दी गई कारावास की सजा के निष्पादन में किसी दोषी द्वारा बिताई गई हिरासत की अवधि को लगाए गए कारावास की अवधि के विरुद्ध

समायोजित नहीं किया जाना चाहिए। ऐसे अन्य मामलों में दोषसिद्धि पर उस पर।"

वर्तमान मामले में हम उपरोक्त निर्देश की सत्यता को लेकर चिंतित हैं।

संहिता की धारा 428 इस प्रकार है:

"428. अभियुक्त द्वारा जेल में बिताई गई हिरासत की अवधि को कारावास की सजा के विरुद्ध समायोजित किया जाएगा- जहां किसी आरोपी व्यक्ति को दोषसिद्धि पर ऐसी अवधि के लिए कारावास की सजा सुनाई गई है जो जुर्माने के भुगतान में चूक की स्थिति में कारावास नहीं है, तो कारावास की अवधि उसी मामले की जांच, पूछताछ या सुनवाई के दौरान और ऐसी सजा की तारीख से पहले उसके द्वारा की गई हिरासत, यदि कोई हो, को ऐसी सजा पर उस पर लगाए गए कारावास की अवधि और ऐसे दायित्व के विरुद्ध समायोजित कर दिया जाएगा। ऐसी दोषसिद्धि पर कारावास भुगतने वाले व्यक्ति को उस पर लगाए गए कारावास की शेष अवधि, यदि कोई हो, तक सीमित रखा जाएगा।"

दंड प्रक्रिया संहिता, 1898 में संहिता की धारा 428 के अनुरूप कोई प्रावधान नहीं था जिसे निरस्त कर दिया गया और वर्तमान संहिता द्वारा प्रतिस्थापित कर दिया गया। इसे पूर्व संहिता के लागू होने के समय व्याप्त असंतोषजनक स्थिति को दूर करने के उद्देश्य से पेश किया गया था। तब यह पाया गया कि कई व्यक्तियों को सजा-पूर्व चरण में अनुचित रूप से लंबी अवधि के लिए जेल में रखा जा रहा था, दोषी पाये जाने पर कारावास की वास्तविक सजा से कई गुना अधिक समय के लिये उन्हें लगाया जा सकता था। उपरोक्त स्थिति का समाधान करने के लिए, संहिता की धारा 428 अधिनियमित की गई थी। यह एक विचाराधीन कैदी के रूप में हिरासत की अवधि को उस पर लगाए गए कारावास की सजा के विरुद्ध समायोजित करने का प्रावधान करता है। इसलिए संहिता की धारा 428 का लाभ सुरक्षित करने के लिए, कैदी को यह दिखाना होगा कि उसे उस मामले की जांच, पूछताछ या मुकदमे के उद्देश्य से जेल में हिरासत में लिया गया था जिसमें बाद में उसे दोषी ठहराया गया और सजा सुनाई गई। इसका तात्पर्य यह है कि यदि कोई व्यक्ति किसी अन्य मामले की जांच, पूछताछ या मुकदमे की अवधि के दौरान किसी मामले में अपराध के लिए दोषी ठहराए जाने पर अदालत द्वारा लगाए गए कारावास की सजा काट रहा है, तो वह यह दावा नहीं कर सकता है कि इस तरह की अवधि व्यतीत हो गई है। जांच, पूछताछ या मुकदमे को बाद के मामले में लगाए जाने वाले कारावास की सजा के खिलाफ रखा जाना चाहिए, भले ही वह

उस अवधि के दौरान हिरासत में था। ऐसे मामले में हिरासत की अवधि वास्तव में कारावास की अवधि का एक हिस्सा है जिसे वह पहले किसी अन्य अपराध के लिए सजा सुनाए जाने पर भुगत रहा है। यह उसी मामले की जांच, पूछताछ या मुकदमे के दौरान उसके द्वारा बिताई गई हिरासत की अवधि नहीं है जिसमें बाद में उसे दोषी ठहराया गया और कारावास की सजा सुनाई गई। वह संहिता की धारा 428 के तहत दोहरे लाभ का दावा नहीं कर सकता है, यानी उसी अवधि को पूर्व अपराध करने के लिए लगाए गए कारावास की अवधि के हिस्से के रूप में गिना जाएगा और साथ ही बाद के अपराध को करने के लिए लगाए गए कारावास की अवधि के खिलाफ समायोजित किया जाएगा। इस संबंध में उच्च न्यायालय द्वारा जारी निर्देश अप्राप्य है। इसलिए, राज्य सरकार के रुख को बरकरार रखा जाना चाहिए।

इसलिए, याचिकाकर्ता यह दावा करने का हकदार नहीं है कि 1 फरवरी, 1980, जिस तारीख को उसे सत्र मामले में दोषी ठहराया गया था और 16 फरवरी, 1981, जिस तारीख को मेट्रोपॉलिटन मजिस्ट्रेट, दिल्ली द्वारा उसे दोषी ठहराया गया था, के बीच की अवधि, जब वह उस पर सत्र मामले में लगाए गए कारावास को मेट्रोपोलिटन मजिस्ट्रेट, दिल्ली द्वारा लगाए गए कारावास की अवधि के विरुद्ध समायोजित किया जाना चाहिए। उस अवधि को सेशन मामले में निर्देशित अनुसार याचिकाकर्ता द्वारा भोगे गए कारावास के हिस्से के रूप में गिना जाना चाहिए।

किसी अन्य विवाद का आग्रह नहीं किया गया है।

परिणामस्वरूप याचिका खारिज की जाती है।

एस.आर.

याचिका खारिज की गई।

यह अनुवाद आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस टूल सुवास की सहायता से अनुवादक अधिवक्ता नृपेन्द्र सिनसिनवार द्वारा किया गया है।

अस्वीकरण : यह निर्णय पक्षकार को उसकी भाषा में समझाने के सीमित उपयोग के लिये स्थानीय भाषा में अनुवादित किया गया है और किसी अन्य उददेश्य के लिये इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है। सभी व्यवहारिक और आधिकारिक उददेश्यो के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रामाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उददेश्य से भी अंग्रेजी संस्करण ही मान्य होगा।